REVIEW OF RESEARCH
IMPACT FACTOR : 5.2331(UIF) UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514 ISSN: 2249-894X
VOLUME - 7 | ISSUE - 10 | JULY - 2018

स्थानीय स्वायत्त शासन की ऐतिहासिक पृष्टभूमि

डॉ. संतोष कुमार चौधरी
ग्राम– चौगमा, पो.–बहेड़ा, जिला– दरभंगा।

प्रस्तावना :

स्थानीय स्वायत्त शासन का अर्थ मूलतः स्थानीय जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों के द्वारा स्थानीय प्रशासन होता है। यह लोकतांत्रिक शासन पद्धति की आधरशिला हेाती है। यह प्रशासनिक अनुभव एवं विकास का साधन होता है। भारत प्राचीन समय से ही स्थानीय शासन के इतिहास के लिए प्रसिद्ध है। भारतीय समाज– व्यवस्था एवं ग्रामीण व्यवस्था के बीच अविच्छिन्न सम्बन्ध है। ग्रामीण व्यवस्था ही भारतीय व्यवस्था है, क्योंकि भारत प्रधानतः गांवों का देश है और इस देश की समृद्धि पर ही राष्ट्रीय समुदाय की समुन्नति एवं समृद्धि निर्भर करती है।

संगठित सामाजिक व्यवस्था के प्रारम्भ में ही राजनीतिक नियंत्रण भी प्रारम्भ हो जाता है। यद्यपि आदिमकाल में भी समूह प्रवृति देखने को मिलती थी, किन्तु जैसे– जैसे सामाजिक व्यवस्था का सूत्रपात्र हुआ उसको संचालित करने के लिए शासन की आवश्यकता भी महसूस हुई। मानव की सदैव से यह इच्छा रही है कि जो भी सरकार हो, वह उसके स्वयं के द्वारा शासित और अच्छी सरकार होनी चाहिए। मानव प्रकृति से ही स्वकेन्द्रित होता है और वह कभी यह पसंद नहीं करता कि उसके सार्वजनिक मामलों का निर्णय कोई और करें। मानव की यह इच्छा अतीत काल से ही स्थानीय संस्थाओं के विकास का अन्तर्निहित दर्शन रही है।

मानव सृजन के साथ ही पंचायत प्रजातांत्रिक प्रशासन का प्राचीनतम धरोहर है, जिसका स्पष्ट आभास वैदिक साहित्य में विद्यमान है। सृष्टि उत्पत्ति के प्रारम्भ में ऋषियों ने अपनी जीवन यात्रा सुखमय करने तथा जनता का अभ्युदय निश्रेयस सिद्धि के लिए संघ– शक्ति के द्वारा समाज एवं राष्ट्र का निर्माण किया। संघ शक्ति का प्रादुर्भाव ''विराज'' शासन से प्रारम्भ हुआ, जिसमें मानव जाति संगठित हुई और सब मिलकर शासन प्रबन्ध करने लगी जिसमें कोई अध्यक्ष नहीं होता था। इसमें सम्पूर्ण समूह द्वारा निर्णय लेकर निर्णय के अनुसार कार्य किया जाता था। उस समय समूह ही निर्णय एवं कार्यान्वित दोनों में उत्तरदायी था। वहाँ प्रत्यक्ष प्रजातंत्र था और इसी स्वरूप में पंचायत का बीजांकुर हुआ।

वैदिक काल की समुन्नत समाज की बात करें तो सम्पूर्ण पंचायत प्रजातांत्रिक थी। गांव से राष्ट्र तक के प्रशासकों का निर्वाचन प्रत्येक प्रजा–जन के द्वारा किया जाता था। उस समय के निर्वाचन की विशेषता यह थी कि निर्वाचन बहुमत के द्वारा नहीं किया जाता था। प्रत्युत सर्वमत के द्वारा ही किया जाता थाा। इस प्रकार दो दलों के बीच की दरार बनने का अवसर ही नहीं थे। उस समय पंचायत पदवाहकों की योग्यता निर्धारित थी। प्रजानन योग्य, विद्वान एवं कुशल व्यक्तियों को ही पदवाहक के रूप में चुनते थे, किन्तु उस समय के पदवाहकों की योग्यताएँ आज से भिन्न थी। आज 25 वर्ष की आयु पूरी होने पर कोई व्यक्ति पंचायत पदवाहक के लिए अभ्यर्थी बन सकता है, किन्तु वैदिक काल में वृद्ध व्यक्ति को चुना जाता था। वे आयु के आधार पर वृद्ध नहीं होते थे, प्रत्युत बुद्धि, विद्वता, विवेकशीलता, कुशलता, चतुरता, नैतिकता एवं सत्यवादिता के आधार पर वृद्ध होते थे। वृद्ध होने के साथ– साथ पदवाहक राग, द्वेष, ईर्ष्या, वैमनस्य आदि से सर्वथा दूर रहते थे।

स्थानीय स्वायत् शासन के अन्तर्गत शासनाध्यक्ष की स्थिति पंचायत–वासियों के बीच पिता तुल्य सम्मानित थी। मुखिया के प्रति पंचायत के सदस्यों की अटूट श्रद्धा एवं स्नहे था। वे अपनी परिस्थिति के अनुरूप

कर्त्तव्यों का सम्पादन किया करते थे। वे जनता के सर्वांगिंन विकास, के लिए विभिन्न प्रकार के कार्य किया करते थे।

वैदिक काल में जिस पंचायत पद्धति का प्रारम्भ हुआ, उसका रूपान्तरित स्वरूप रमायण काल में भी कायम था। यह भारतीय लोकतंत्र की मूल इकाई के रूप में ग्रामो की स्वयत्ता, स्वावलम्बन एवं सत्ता के विकेन्द्रीकरण का माध्य था। बाल्मीकी रमायण–काल में स्थानीय शासन पौर, जनपद नैगम आदि के अध्यक्षों द्वारा संचालित था। वैदिक काल की तरह इस काल में भी ग्राम के प्रधान को ''ग्रामणी'' और ''महत्तर'' के नाम से सम्बोधित किया जाता था। ''ग्रामणी'' ग्राम का बहुत बड़ा अधिकारी होता था, जो कि राजा कि दृष्टि में अत्यंत सम्मानित एवं प्रतिष्ठित पदाधिकारी होता था।

वैदिक काल में जिस आदर्श पंचायत प्रणाली का प्रारम्भ हुआ, उसका रूपान्तरित स्वरूप रामायण– काल पार कर महाभारत– काल में भी यथोक्त रहा। महाभारत काल में भी स्थानीय स्वायत् शासन पौर, श्रेणी आदि संस्थाओं के द्वारा सचांलित था, जो पंचायत के पर्यायवाची शब्द थे। पौर के प्रधान पौर– वृद्ध कहलाते थे, जो केन्द्रीय सभा में भी बैठकर केन्द्रीय सरकार के शासन– कार्य में भाग लेते थे। श्रेणी को राज्य की ओर से सेना रखने का भी अधिनियम प्राप्त था। श्रेणी– धर्म के अनुसार श्रेणी का संचालन होता था। आमतौर से ग्राम का शासन ग्राम– वृद्ध के द्वारा संचालित था, जो ग्राम पंचायत का ही स्वरूप था। ग्राम पंचायत अपनी आन्तरिक व्यवस्था के लिए पूर्ण स्वतंत्र थी। यह पंचायत अपनी साधारण आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए दूसरों पर आश्रित नहीं थी।

स्थानीय स्वायत् शासन का उत्कृष्ट स्वरूप बौद्ध काल में था। स्थानीय शासन ग्राम सभा पूज एवं गण द्वारा होता था। ग्राम से राष्ट्र तक की शासन– व्यवस्था पंचायत पद्धति पर आधारित थी। उस समय की पंचायत में न्याय और प्रशासनिक दोनों कार्य किये जाते थे। बौद्धकालीन गणराज्यों में ग्राम सभा के कार्य बहुमत द्वारा सम्पादित होते थे। ग्राम सभा से गणराज्य तक की व्यवस्था लोकतांत्रिक थी। उस समय के राज्यों में महामात वो हारिक, सूत्रधार, सेनापति अट्टकुल, उपराजान, राजान आदि पदाधिकारी थे। इनके अतिरिक्त ग्राम–ग्रामणीं भोजक, भंडारिक एवं राष्ट्रीक आदि पंचातय के पदाधिकारीगण थे।

बौद्ध साहित्य की तरह जैन साहित्य में भी पंचायत प्रणाली का उल्लेख है। उन उल्लेखों में सबसे महत्वपूर्ण उल्लेख आचारंग सूत्र में मिलता है उसमें 1. अरायणि 2. गणरायनि 3. जुवा रायनि 4. दो एरव्याणि 5. वैराज्जाणि और 6. विरूद्ध रज्जाणि विभिन्न प्रकार के शासन के द्योतक थे, जो स्थानीय– स्वाय्यत्त शासन व्यवस्था करने वाली पंचायत के पर्यायवाची शब्द थे। इनके अतिरिक्त उसी आचारंग सूत्र में अराज्य, वैराज्य, गणराज्य एवं विरूद्ध राज्य जनतात्रिंक रूपों में सथानीय श्यासन के केन्द्र थे, जो पंचायत के द्योतक थे।

मौर्यकाल में स्थानीय सशासन काफी विकसित था। शासन की सुविधा के लए प्रान्तों के उप– विभाग थे जो ''अर्थशास्त्र'' के अनुसार इस प्रकार थे 1. जनपद 2. स्थानीय (इसमें लगभग 500 गांव सम्मिलित थे) 3. दोणमुख (इसमें लगभग 400 गांव सम्मिलित थे।) 4. स्वार्वटिक (इसमें लगभग 200 गाँव सम्मिलित थे।) 5. संग्रम (इसमें लगभग 10 गांव सम्मिलित था।) 6. जनपद (जिला) का मुखिया स्थानिक'' कहलाता था। ग्राम का अधिकारी ''ग्रामिक'' कहा जाता था। ग्राम पदाधिकारियों के पास भूमि कर, सिंचाई, जंगल, यातायात, न्याय तथा देखभला का काम था। पाँच या दस ग्रामों का अधिकारी ''गोप'' कहलाता था। चन्द्रगुप्त मौर्य ने स्वायत् शासन प्रणाली प्रचलित करके बड़ी दूर दर्शिता और राजनीतिज्ञता का परिचय दिया। उसने शासन विकेन्द्रीकरण की नीति अपनाई। उसने ग्रामों की व्यवस्था पर वसूली तथा अन्य प्रशासनिक कार्यो में ग्राम– वृद्धों का सहयोग लिया जिससे उसके साम्राज्य में विद्राहों की आशंका नहीं रहा। चन्द्रगुप्त के शासन काल में दूर– दूर के प्रान्तों में भी सिंचाई, भूमि के नाप, यातायात मार्गो आदि की समुचित प्रबन्ध था। परिणामतः उसके साम्राज्य में चारों और शान्ति और समृद्धि दिखाई देने लगी।

वैदिक पंचायतों की झलक दक्षिण भारत के चेर, चोल और पांड्य राज्यों में मिलती है, जहाँ पाँच समितियों द्वारा शासन संचालन होता था 1. जनता 2. ब्राहम्ण 3. चिकित्सक 4. ज्योतिषि एवं 5. मंत्रीगण। पहली समिति जनता के अधिकारों के रक्षा करती थी। दूसरी समिति धार्मिक कृत्यों का निर्णय करती थी। तृतीय समिति स्वास्थ्य संबंधी व्यवस्था करती थी। चतुर्थ समिति सामाजिक उत्सवों का समय निर्धारित करती थी तथा महत्वपूर्ण घटनाओं की भविष्यवाणी करती थी। पंचायत समिति राज्य के कर एवं व्यय पर नियंत्रण रखती थी तथा न्याय करती थी।

गुप्तकाल में स्थानीय शासन– व्यवस्था पंचायतों के सहयोग से की जाती थी। उस समय की पंचायतों को अतिरिक्त मामलों में पूर्ण स्वावलम्बन एवं स्वतंत्रता प्राप्त थी। उसके पदवाहाकें का निर्वाचन सभी जातियों और वर्गो के द्वारा किया जाता था। उस समय पश्चिमोत्तर भारत में पौर, जनपदों और दक्षिण भारत में ग्राम सभाओं के द्वारा स्थानीय प्रबन्ध किया जाता था, जो पंचायत के पर्यावाची शब्द थे। गुप्तकालीन स्थानीय स्वशासन में 16 महाजन पदों अथवा गणराज्यों का उल्लेख मिलता है। इस प्रकार वहाँ शासन में विकेन्द्रीकरण की नीति को अपनाया गया था। ''परिषा'' गण्राज्य की मुख्य संस्था होती थी। यह वर्तमान में संसद के समान होती थी इसके सदस्यों का निर्वाचन जनता करती थी। मंत्री परिषद के सदस्य गणपति इसमें एकत्रित होकर महत्वूपर्ण विषय पर चर्चा करते थे। पक्ष व विपक्ष में मत देने के लिए रंगीन शलाकाओं का प्रयोग किया जाता था। इसी प्रकार की प्रक्रिया ग्राम स्तर पर भी अपनाई जाती थी।

चौहदवीं शताब्दी में सल्तनत विस्तार के कारण प्रान्तों को जिलों में बांट दिया गया था, इन्हें ''शिक'' कहा जाता था। शिक का अध्यक्ष शिकदार कहलाता था, जिसके अधीन अनेक शासकीय कर्मचारी होते थे, जिलों को परगनों में बाँटा गया था। इतिहासकार अकीक के मतानुसार फिरोज के समय दो–आब में पचपन परगने थे। प्रशासन की सबसे छोटी इकाई गांव था और गांव में शासन कार्य चलाने के लिए मुकद्दम खूत तथा चौधरी होते थे। परगने कई गांवों से मिलकर बनते थे। इब्न बतूता ''सादी'' अथवा सौ गांवों के समूह का शासन की इकाई के रूप में उल्लेख करता है।

मुगल शासन काल में ग्राम स्वायत शासन के सबसे महत्वूपर्ण निकाय थे। प्रत्येक मुगल प्रान्त अनेक जिलों में विभक्त था। जिले के नीचे परगना शासन इकाई कार्यरत थी। परगनों को पुनः गांवों में बांटा गया था। गांवों का प्रबन्ध पंचायतें करती थी। पंचायतें मुख्यतः गांवों में सफाई, सुरक्षा, शिक्षा, सिंचाई, विवादों का फैसला आदि कार्य करती थी।

गांवों में तीन मुख्य अधिकारी होते थे। मुकद्दम, पटवारी और चौधरी मुकद्दम, गांवों की देखभाल का कार्य करता था। पटवारी लगान वसूल करता था तथा चौधरी गांवों के मुकदमों का निपटारा करता था। गाँव की सुरक्षा के लिए एक चौकीदार होता था। परन्तु मुस्लिम शासनकाल में स्थापित संस्थापकों की स्थिति में परिवर्त्तन देखने को मिलता है। इस काल की स्थानीय संस्थायें प्राचीन भारत की स्थानीय संस्थाओं के समान स्वतंत्र एवं लोकतान्त्रिक नहीं थी।

भारत में प्राचीन पंचायत परम्परा का अस्तित्व ईस्ट इंडिया कम्पनी के समय तक ही कायम रहा। भारत पर एक के बाद दूसरी विदेशी सत्ता एवं विजेता जैसे– सीथियन, यूनानी, अफगानी एवं मंगोल आदि लोग पहाड़ों से होकर डच और फ्राँसीसी समुद्र के रास्ते से भारत आते रहे और इस देश पर अधिपत्य जमाते रहे। यही कार्य ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा भी किया गया परन्तु इस देश की संस्कृति एवं धर्म से प्रभावित ग्राम पंचायत ज्वार–भटों के थपेड़ों से अप्रभावित रहने वाली समुद्री चट्टानों की तरह ही अप्रकाशित रही अर्थात पंचायत अब तक यहाँ की जमीन में जड़ जमाये रही। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के समय में ही प्राचीन भारत के ग्रामों की मौजावारी ग्राम व्यवस्था के विरूद्ध अंग्रेजों द्वारा जबरदस्ती जमींदारी एवं रैयतवारी प्रथा के लादे जाने के फलस्वरूप गांवों की इन पंचायतों को सांघातिक चोट लगी, जिनसे वे मृतप्राय हो गयी।

सामान्यतः स्थानीय स्वायत शासन की वर्तमान संरचना और कार्य प्रणाली मूलतः ब्रिटिश शासन की देन मानी जाती है। 1870 में लार्ड मेयो ने स्थानीय शासन की स्थापना का प्रस्ताव प्रस्तुत किया तो इसे एक क्रान्तिकारी कदम माना गया और सरकार की ओर से यह दावा किया गया कि इसके माध्यम से भारतीयों को आधुनिक शासन कला में प्रशिक्षण प्राप्त करने का स्वार्णिम अवसर हासिल होगा। अंग्रेजों का यह दावा ऐतिहासिक आधार पर सही नहीं है। वास्तविकता तो यह है कि भारत ऐतिहासिक युग के प्रारम्भ से ही आत्मनिर्भर, स्वशासित तथ ग्राम समुदायों का देश रहा है साथ ही श्रेणी और निगम के रूप में प्राचीनकाल से ही भारत के व्यवसायी और कारीगर नगरों में स्थानीय स्वायत्तत्ता का लाभ उठा रहे थे। यह अंग्रेज ही थे जिन्होंने केन्द्रीयकृत शासन प्रणाली की स्थापना कर भारत की स्थानीय स्वायत्तत्ता की सदियों पुरानी परम्परा को समाप्त कर दिया।

उपरोक्त आधार पर निष्कर्शतः यह कहा जा सकता है कि यद्यपि भारत में स्थानीय स्वशासन प्राचीन काल से ही विद्यमान था, किन्तु वर्तमान संगठन तथा कार्य प्रणाली के रूप में उसका प्रादुर्भाव ब्रिटिश शासक के अन्तर्गत ही हुआ। न तो प्राचीणयुग में प्रचलित ग्रामीण स्वशासन की व्यवस्था में और न उस समय की नगरीय

शासन प्रणाली में ही ऐसा शासन देखने को मिलता था। जिसका समय– समय पर निर्वाचन होता हो और निर्वाचकगण के लिए उत्तरदायी हो। ऐसी व्यवस्था का विकास तो पश्चिम में हुआ था और ब्रिटिश सरकार ने भारत में इसका सूत्रपात किया था।

संदर्भ सूची :–

1ण श्री राम महेश्वरी, भारत में स्थानीय शासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल।

2ण पंचायत संदेश, वर्ष 20 अंक– 10 जनवरी 1981

3ण हरिश्चन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत, 1983

4ण एच.डी. मालविया, विलेज पंचायत इन इंडिया, अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी– 1956

5ण डॉ. आर.के. मुखर्जी, लोकल सेल्फ गर्वमेन्ट इन एन्सीटन्ट इण्डिया ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस कलकत्ता–1920

6ण चंद्रदेव प्रसाद, भारतीय स्थानीय स्वशासन, पटना– 1980

7. Sharma M.P, Local Self, Government and Local Finance, Allahabad, 1946

8. Dey, S.K, Panchyat Raj, Bombay- 1961